International Journal of Information Movement *Vol. 9 Issue IV* *(August 2024)*
Website: www.ijim.in *ISSN: 2456-0553 (online)* **Pages 15-22**

आज कबीर की प्रासंगिकता क्यों है : एक अध्ययन

नेहा
जूनियर रिसर्च फेलो, पी.एच.डी
हिन्दी विभाग
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र
Email-id : dudyneha4@gmail.com

सारांश : कबीर, भक्ति काल के एक प्रमुख संत और कवि, भारतीय समाज म. एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। उनकी रचनाएँ न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि उन्होंने समाजिक और सांस्कृतिक सुधारों पर भी गहरा प्रभाव डाला है। इस अध्ययन का उद्देश्य कबीर की प्रशंसा का विश्लेषण करना है, जिसम. उनकी रचनाओं के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, और सांस्कृतिक समन्वय पर ध्यान कद्रित किया गया है। कबीर की रचनाएँ एक ऐसी दुनिया की कल्पना करती हैं जहाँ व्यक्ति जाति, धर्म,और सामाजिक सीमाओं से परे जाकर मानवता के व्यापक मूल्य की ओर अग्रसर हो सके।

यह अध्ययन कबीर के काव्य की उन विशेषताओं पर प्रकाश डालता है जो आज के समाज म. भी प्रासंगिक हैं, जैसे कि उनकी सरल भाषा, आत्मा की शुद्धता पर जोर, और भेदभाव के विरोध म. उनका सशक्त संदेश। साथ ही इस शोध म. यह भी विचार किया गया है कि कैसे कबीर की विचारधारा ने उस समय के धार्मिक और सामाजिक ढाँचे को चुनौती दी और व्यापक सामाजिक सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया।

अंत म, यह अध्ययन कबीर के काव्य की वर्तमान समय म. प्रासंगिकता पर भी चर्चा करता है, जिसम. उनकी शिक्षाओं के आधुनिक समाज पर संभावित प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : मूल्य, समानता, सहिष्णुता, समन्वय, मानवता, भाषा, शुद्धता, भेदभाव, विचारधारा, सुधार, प्रासंगिकता, प्रभाव, शिक्षाएँ, समाज, विश्लेषण।

1.0 प्रस्तावना

कबीर युग दृष्टा कवि थे, उनका व्यक्तित्व, उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन है। कबीर ने अपने वर्तमान को नहीं भोगा बल्कि भविष्य की चिरंतर समस्याओं को भी पहचाना। कबीर का समाज जात-पात, छुआछूत, धार्मिक पाखण्ड़, मिथ्याडंबरों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, हिन्दू-मुस्लिम वैमनष्य, शोषण-उत्पीड़न आदि से त्रस्त तथा पथ-भ्रष्ट था। समाज के इस पतन में धर्म, धर्मशास्त्रों तथा धर्म के ठेकेदारों की अहम भूमिका थी। कबीरदास जी ने समय की नस को पहचाना तथा समाज के मार्गदर्शन हेतु एक बड़े संघर्ष एवं परिवर्तन की आवश्यकता महसूस

की। तत्कालीन विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ लड़ने की अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवनानुभवों से मिला। उन्होंने जिन सामाजिक, सांस्कृतिक विषमता के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया, वे आज भी यथावत हैं। कबीरदास जी का वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग-विहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द, आडम्बरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए नितांत प्रासंगिक है।

साहित्य में प्रासंगिकता से अभिप्राय है-वर्तमान के संदर्भ में पूर्ववर्ती कृतिकारों के मूल्यों की विवेचना। इस प्रासंगिकता शब्द का प्रयोग यद्पि काफी समय से हो रहा है, परन्तु यह पूर्ववर्ती रचनाओं के संदर्भ में यह अधिक उपयुक्त लगता है। यह निर्विवाद सत्य है कि आज का युग कबीर के युग से भिन्न हो चुका है, परन्तु आज भी जब साहित्य में प्रासंगिकता का प्रश्न उठाया जाता है, तो पूर्ववर्ती कवियों में कबीर का नाम अवश्य आता है। कबीर का युग राजाओं, शासकों, सामन्तों का युग था तो आज वर्तमान में इसका रूप प्रजातन्त्र ने ले लिया है। कबीर ने तत्कालीन प्रवेश के कारण अपनी रचनाओं में ऐसे सशक्त विषयों को उठाया था, जो आज के वर्तमान समाज में प्रांसगिक है। मध्यकालीन कवियों ने सैकडों वर्ष पूर्व जो वाणियाँ, उपदेश तथा यथार्थ उद्गार प्रकट किये, इतने समय बाद भी इनकी उपादेयता/प्रासंगिकता ज्यों की त्यों बनी हुई है तथा वर्तमान सामाजिक, आर्थिक-राजनैतिक विसंगतियों एवं उलझनों को समझने में किस प्रकार सहायक है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर कबीर के काव्य की वर्तमान प्रासंगिकता को समझने का प्रयास करेंगें।

यद्पि कबीरदास जी के सोच-विचार का संसार ईश्वर का संसार था, परन्तु फिर भी उन्होंने लोक को अनदेखा नहीं किया। यह तथ्य ध्यातव्य है कि लोक में आर्थिक व्यवस्था की अपना महत्ता एवं अनिवार्यता है। कबीर धन की इस महता से भली-भाँति परिचित थे, इसलिए उन्होंने भगवान से अत्यन्त विनम्र भाव से जीविका की प्रार्थना की है। इसके विपरीत जहाँ कबीर धन की अनिवार्यता से परिचित थे, वहीं दूसरी ओर इसकी दूषणता से भी परिचित थे, उन्हें मालूम था कि धन सामाजिक विषमता का भी कारण है, यह अनेक विकारों को उत्पन्न करता है। इतना ही नहीं कबीर ने तत्कालीन समाज में लोगों का धन के लिए विवश होकर कुकृत्य (कुकर्म) करते देखा है। वइ इस विषय में प्रभु से प्रार्थना करते हैं-

''साई इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय
ता मै भूखा ना रहुँ, साधु न भूखा जाय।''[1]

कबीर जहाँ एक और धन की अनिवार्यता को मानते है, वहीं इसके संग्रह को अनुचित मानते है। वह कहते हैं कि उतना ही धन संचय करना चाहिये जितनी आवश्यकता हो अर्थात् ना तो वह स्वयं भूखा रहे और न ही शरण में आने वाले साधु को भूखा जाने दूँ। अतः स्पष्ट है कि आर्थिक दृष्टि से कबीर चिंतन वर्तमान युग में प्रासंगिक है।

साहित्य समाज का वह दर्पण होता है जिसमें उस साहित्यकार द्वारा समाज का विशद विवेचन किया जाता है।

इसलिए समाज साहित्य एवं साहित्यकार का एक अनूठा सम्बन्ध है। इस दृष्टि से कबीर का समाज विभिन्न सम्प्रदायों (हिन्दू-मुस्लिम) में बँटा होने के कारण बाह्य-आडम्बरों का बोलबाला था। हिन्दू जाति राजनैतिक दृष्टि से पराजित होने के कारण हीन भावना से ग्रस्त थी। समाज में विभिन्न वर्ग एवं वर्ण बने हुए थे, जिससे हिन्दू अछूत की समस्या का सामना कर रहे थे। उधर मुस्लिम सम्प्रदाय विजित होने के कारण उद्दण्ड एवं अत्याचारी बना गया था। वह इस्लाम की शिक्षा को छोड़कर सुरा-सुन्दरी में लिप्त होने के कारण सामान्य जनता को साम्प्रदायिक तौर पर भड़काकर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। इसी समय समाज में कबीर जैसे निर्गुण सन्तों का पर्दाफाश हुआ, जिसमे समाज में वर्ण एवं वर्ग व्यवस्था को समाप्त करके एक ही ईश्वर की स्तुती करने को कहा-

''पूजा करूं न निमाज गुजारुं।
एक निराकार हिरदै नमस्कारुं''।।[2]

कबीर ने समाज में व्याप्त अनेक धर्म और इनके आधार पर इनके जातियों पर भी व्यंग्य किया है, क्योंकि वह जाति-पाति के घोर विरोधी थे।

''जाति-पाति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई''।।[3]

अर्थात् कबीरदास जी का मानना था कि हमें व्यक्ति से उसकी जात-पात नहीं पूछनी चाहिए, क्योंकि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान है कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

''जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान''।।[4]

कबीरदास जी का मानना था कि हमें किसी भी व्यक्ति को उसकी जाति के आधार पर कोई पद नहीं देना चाहिए अर्थात् कहने का भाव यह है कि हमें किसी भी व्यक्ति से उसकी जात नहीं पूछनी चाहिए क्योंकि सभी व्यक्ति एक समान है। वर्तमान में भी लोग कहीं न कहीं जाति के आधार पर एक-दूसरे का मूल्यांकन करते हैं। जिससे वर्तमान सन्दर्भ में कबीर की प्रासंगिकता उचित प्रतीत होती है।

''ऊँचे कुल का जमनिया, करनी ऊँच ना होय।
स्वर्ण कलश मदिरा भरा, साधू निन्दे सोय''।।[5]

अर्थात् ऊँचे कुल में भले ही जन्म लिया हो, परन्तु कर्म अच्छे न हो तो ऊँची जाति का क्या गौरव ? कलश भले सोने का हो पर इसमें मदिरा भरी हो तो सज्जन या साधुजन अवश्य इसकी निन्दा करेंगे।

अत: कबीर द्वारा तत्कालीन समाज में विभिन्न आड़म्बरों का विरोध वर्ग-विषमता की समाप्ति के कारण न केवल कबीर एक तत्कालीन समाज सुधारक कहे जाते हैं बल्कि उनकी यह पवित्र एवं रूढ़िवादी भावना आज भी प्रासंगिक प्रतीत होती है।

भारतीय इतिहास का मध्यकाल धार्मिक दृष्टि से अंध-विश्वासों का युग था। उस समय हिन्दू समाज विभिन्न सम्प्रदायों (शैव, वैष्णव, संत एवं शाक्त) में बँटा हुआ था। धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड, पाखण्ड, एवं अँधविश्वास फल-फूल रहे हैं। हिन्दू-समाज में मूर्ति-पूजा को माना जाता था। कबीदास जी ने तत्कालीन मूर्ति-पूजा का खण्डन करते हुए कहा है-

''पत्थर पूजै हरि मिलै, तो मै पूजूँ पहार,
ताते तो चाकी भली, पीस खाये संसार''।।[6]

इसके विपरीत दूसरी और मुस्लिम सम्प्रदाय समाज में विभिन्न पाखण्ड़ों एवं धार्मिक आड़म्बरों के कारण जनता का शोषण कर रहे थे तथा जनता को भ्रमित करके उन्हें मिथ्यावादी विचारों का शिकार बना रहे थे। वे समाज में हिन्दुओं की देवी-देवताओं की मूर्तियाँ एवं मन्दिरों को तोड़कर सगुण के प्रति विश्वास खत्म करके मस्जिद निर्माण में लगे थे। कबीर ने मुसलमानों द्वारा मस्जिद में अजां आदि का विरोध करते हुए कहा है-

''कंकर पाथर जोड़ि के, मस्जिद लेई बनाय,
तो चढ़ि मुल्ला बाग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय''।।[7]

कबीरदास जी पढ़े-लिखे नहीं थे परन्तु उन्होंने तत्कालीन धर्म सिद्धान्तों को ग्रहण करके उनका मनन किया एवं महात्मा बुद्ध की भाँति वैदिक कर्मकाण्ड एवं बहुदेववाद का विरोध किया। उनके अनुसार ईश्वर एक है सभी धर्मो के मार्ग उसी और जाते है। वे निर्गुण ब्रहम का स्वरूप बताते हुए कहते है-

'जाके मुख माथा नहीं, नहिं रूप कुरूप,
पुहुप वास से पातरा, ऐसा तत्व अनूप''।।[8]

इसी प्रकार कबीर उसे निर्गुण कहते हैं। उनके अनुसार उसका कोई रंग-रूप, आकार, सूरत, शक्ल, स्वरूप नहीं है। अत: स्पष्ट है कि कबीर ने तत्कालीन समाज में धर्म की सही स्थिति एवं उसके रूप को दर्शाया है जो आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक प्रतीत होता है।

कबीर तब प्रासंगिक हो जाते हैं जब वे धर्म के नाम पर लड़ती मानवता को निर्गुण भक्ति का मार्ग दिखाते हैं। भोली और अज्ञानी जनता को मन्दिरों, मठों और मस्जिदों से निकालकर परमात्मा को स्वयं में खोजने का सन्देश देते हैं। एक ईश्वर की परिकल्पना करता कबीर, वैश्विक मानवता को एक छत के नीचे खड़ा करने का साहस करता है। भारतीय इतिहास का मध्यकाल धार्मिक दृष्टि से अंध-विश्वासों का युग था। उस समय हिन्दू-समाज में अनेक विकृतियाँ थी।

अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी कबीर की प्रासंगिकता को नकारा नही जा सकता। अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनका एक ही उद्देश्य था कि अपने दृष्टिकोण का सहज एवं सरल भाषा शैली में सम्प्रेक्षण। कबीर का सारा ज्ञान लोक सापेक्ष था। कबीर की भाषा-शैली सहज एवं जनतांत्रिक है, उन्हें किसी भी भाषा के शब्दों से परहेज नहीं किया।

वे एक भक्त, संत, विचारक तथा उपदेशक थे। यही कारण था कि वह अपने बात को स्वच्छन्द भावों में कह पाते थे। उन्होंने अपनी लोक सापेक्ष की भाषा-शैली में अपने उपदेशों एवं विचारों को रखकर समाज में अपना उच्च स्थान बनाया है। अत: कबीर की इस प्रासंगिकता के विषय में यही कहा जा सकता है कि आज आधुनिक युग में भी हर कवि एवं साहित्यकार जनमानस की भाषा में अपने काव्य या साहित्य को प्रस्तुत कर समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करते थे जो पंजाब से दक्षिण तक बोली जाती थी। अनेक भाषाओं के शब्द होने पर भी उनकी भाषा को मिश्रित भाषा नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने स्वाभाविक भाषा को ही अपनाया है।

''यह तन काचा कुंभ है लिया फिरै था साथ।
डबका लगा फूटि गया, कछू न आया हाथ।।''[9]

इस प्रकार उनकी भाषा वेंगवती नदी के समान स्वयं आगे बढ़ती सी प्रतीत होती है। उनकी भाषा में अमूर्त को मूर्त और अव्यक्त को व्यक्त करने की अद्भूत क्षमता है। कबीरदास की भाषा न तो सिध्दों की भाषा है न ही नाथ, न योगियों की और न ही रमानन्द की। उन्होंने अपनी मौलिक भाषा का प्रयोग किया है। अहमद शाह ने कबीर की भाषा को बनारस, मिर्जापुर तथा गोरखपुर के आस-पास की हिन्दी भाषा माना है। दूसरी और शुक्ल जी ने अनेक बोलियों का मिश्रण देखकर उसे सधुक्कडी के साथ-साथ संध्या भाषा भी कहा है। उसकी भाषा पर देशाटन उनकी शिष्य मण्ड़ली एवं साधु प्रवृत्ति का प्रभाव है।

मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होई रे।
मैं कहता आखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ अरझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहिया, तू रहता है सोई रे।।[10]

हर युग का साहित्य अपने युग का आईना होता है। इसमें युगीन चेतनाएं, विसंगतियाँ एवं विद्रूपताएँ अपने यथार्थ रूप में सन्निहित होती हैं। एक जागरूक रचनाकर केवल अपने समय को नही जीता बल्कि अपने अतीत और भविष्य में रचता-बसता है। वह समाज से मूल्य ग्रहण कर उन्हें संवर्ध्दित, परिष्कृत कर समाज के लिए उपयोगी, सार्थक तथा स्वस्थ मूल्यों का निर्धारण करता है। वर्तमान समय में हमारे चारों और बढ़ती, जटिलताओं, विडम्बनाओं एवं विसंगतियों के कारण बार-बार पूर्ववर्ती साहित्य एवं विचारों की प्रासंगिकता की माँग है।

मध्ययुग में कबीर और संतो की वाणी ने जो अलख जगाया वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है, जितना तत्कालीन युग में था। कबीर अपने युग की उपज है, युगीन परिस्थितियों एवं समय की मांग ने उनके व्यक्तित्व को गढ़ा। वे सारग्राही आत्मा थे, जिन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी मत-मतांतरों के सार को ग्रहण किया, उन्हें अपने तर्क और अनुभव की कसौटी पर कसा, जो विश्वास, मान्यताएँ, मानवता, नैतिकता एवं भक्ति की राह में व्यर्थ बाधक थे, उनका विरोध किया। कबीर सच्चे भक्त होने के साथ-साथ एक प्रखर, तेजस्वी, स्पष्ट

वक्ता, साहसी, निर्भीक आदि गुणों के धनी थे। इस प्रकार कबीरदास जी ने विषयगत प्रासंगिकता को आज के सन्दर्भ में अभिभूत किया है।

कबीरदास जी ने अपने साथियों और पदों में अनेक स्थलों पर गुरू के महत्व का प्रतिपादन किया है। वे गुरू के महत्व को अपने पदों में व्यक्त करते हैं-

''सतगुरू की महिमा अनंत किया उपगार
लोचन अनंत उघडिया, अनंत दिखावण हार।।''[11]

इस प्रकार कबीर ने सतगुरू की महिमा को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है, अर्थात् गुरू के ज्ञान द्वारा ही शिष्य का उपकार हो सकता है, गुरू ही वह सीढ़ी है जो हमें अपने लक्ष्य तक पहुंचाती है। परन्तु वर्तमान में मूल्यों का विघटन हुआ है। गुरू-शिष्य संबंध तार-तार हुए हैं। पिता अपनी बेटी को बेच रहा है। भाई, भाई का दुश्मन है। कबीर की भक्ति उनके गुरू के प्रति आस्था आज भी भटकती हुई शिष्य पीढ़ी के लिए एक जोत का कार्य करती है। कबीर जी कहते हैं कि जिस भक्त ने गुरू को प्राप्त नहीं किया, उसकी तप और साधना व्यर्थ है। वे गुरू की महिमा को अनंत मानते हैं।

कबीरदास जी ने अपनी साखियों में गुरू को विशेष महत्व प्रदान किया है, उनका मानना है कि संसार में गुरू के समान न कोई हमारा हितैषी है और न ही सगा-संबंधी। इसे वही समझ सकता है जिसके ज्ञान चक्षु खुल गये हो। गुरू ही भक्त को ईश्वर से मिलाता है, वही शिष्य के अन्दर की ज्योति को प्रज्ज्वल्लित करता है। कबीरदास जी तो गुरू और गोविन्द दोनो को एक मानते हैं-

गुरू गोविन्द दोऊ खडे, काके लागू पाय।
बलिहारि गुरू आपने जिनि गोविन्द दियो बताय।।[12]

इतना ही नहीं उन्होंने समाज में एक ऐसे व्यक्ति को गुरू बनाने को कहा जो सही मार्ग-दर्शन करके उस असीम शून्य तक पहुँच सके। वह समाज में गुरू के प्रति लोगों को सचेत करते हुए कहते हैं-

जाका गुरू अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधै अंधा ढेलिया, ढोन्यू कूप पंड़त।।[13]

अत: गुरू की महत्ता के सम्बन्ध में कबीर की यह प्रासंगिकता स्वत: ही स्पष्ट है कि आज आधुनिक युग में समाज के लोगों द्वारा गुरू बनाने की परम्परा बढ़ती जा रही है। आज समाज में भोली-भाली जनता कपटी गुरूओं के चंगुल मे फँसती जा रही है।

कालि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी बधाई।
दैहि पईसा ब्याज की, लेखां करता जाई।।[14]

अर्थात् कलयुग में साधु-सन्यासी, बड़े लोभी और पाखण्ड़ी हो गए हैं। उनकी इच्छाएं असीमित हो गई हैं। वे

बनिए-महाजन से भी नीचे जा गिरे हैं। रूपया-पैसा ब्याज पर देकर पोथियों में उसके ब्याज का लेखा-जोखा करते रहते हैं। लगभग छः सौ वर्ष पहले कही गयी बात आज भी कितनी सार्थक प्रतीत हो रही है।

कबीरदास जी ने मूर्ति-पूजा का विरोध किया तथा नाम स्मरण पर अत्यधिक बल दिया है, वह नाम को ही ब्रहम मानते हैं। कबीरदास जी का कहना है कि नाम स्मरण की एक ऐसा आधार है जिसके द्वारा मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। सभी वेद-शास्त्रों में भी राम नाम को सर्वश्रेष्ठ माना है। इसलिए साधक को निरन्तर राम-नाम का चिंतन करना चाहिये तथा अन्य बातों को छोड देना चाहिए। राम को तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि-

तत तिलक तिहूँ लोक में, रामनाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार।।
कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अति सब सोध्या, दूजा देखौ काल।।[15]

इस प्रकार कबीर ने मूर्तिपूजा, बाहय-आड़म्बरो का विरोध किया तथा नाम स्मरण, ईश्वर के गुण गाने पर बल देते हैं। वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो कबीरवाणी भी सार्थक प्रतीत होती है, जब हम देखते हैं कि बाजारवाद की चकाचौंध के बीच राम नाम मन को काफी शान्ति देता है, वह यांत्रिक मनुष्य जीवन को प्रफ्फुलित बनाता है। कबीर समाज सुधारक व सचेत युग-दृष्टा थे, उनका कवि कर्म व व्यक्तिगत जीवन समाज कल्याण की हार्दिक भावना से अभिप्रेरित है, उन्होंने अपने समाज की विसंगतियों की पहचान की व वैकल्पिक रूप में एक मौलिक व आदर्श जीवन दृष्टि को ने केवल प्रस्तावित किया बल्कि उस जीवन दृष्टि को स्थापित करने हेतु हर प्रकार के भय व लालच से मुक्त रहकर दृढ़तापूर्वक निरन्तर संघर्ष किया। कबीर ने अध्यात्मवाद की अपेक्षा मानवतावाद व सामाजिक समरसत-समन्वयवाद की स्थापना को बल दिया व प्रेममार्ग के पथिक होने के कारण कबीर ने बंधुत्व व भाईचारे की राह में आने वाले हर रूढि, कर्मकांड, बाह्य आडंबर व वैमनस्य रूपी शूलों को हटाकर 'वसुधैव कुटुंबकम् की भावना को जन-मन में संपादित किया व इसी वजह से इनका काव्य कालजयी है। आज के युग में कबीर की प्रासंगिकता को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक हर आयाम में स्वीकारा है।

आज भी समाज में विकृतियों को उखाड़ने हेतु कबीर जैसे विद्रोही तेवर, सरल तथा समरसवादी-यथार्थ मन की अत्यन्त आवश्यकता है जो समतावादी समाज की आवाज मुखर रूप से उठाए व समझौतावाद को अस्वीकार कर प्रेम मार्ग को चुने तथा मूल्यों को तरहीज देकर समाज को सार्थक दिशा प्रदान करें। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि आज भी वर्तमान में कबीर की प्रासंगिकता उचित प्रतीत होती है।

2.0 संदर्भ सूची

1. डॉ० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ-88

2. डॉ० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ-152
3. 'कबीर के दोहे', कबीरदास
4. वही
5. कबीर ग्रंथावली, सं. पुष्पपाल सिँह
6. डॉ० श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-34
7. अकथ प्रेम कहानी, प्रो. अग्रवाल, कबीर की कविता और उनका समय, पृष्ठ-77
8. वहीं, पृष्ठ 77-78
9. डॉ० श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-33
10. वहीं।
11. वहीं, पृष्ठ-1
12. कबीर के दोहे, बीजक।
13. कबीर ग्रंथावली, डॉ० श्याम सुन्दरदास, पृष्ठ-2
14. वहीं, पृष्ठ-76
15. ग्रन्थावली, सुमिरण कौ अंग, साखी 2, 3 पृष्ठ-7